International Indexed Peer Review & Research Journal, ISSN-0975-3486(Print), E-ISSN-2320-5482, Jan, Feb, March 2019 (Combined) ISSUE-112,113,114

शोधपत्र– शिक्षा

नाट्यीकरण प्रक्रियाऐं: विद्यार्थी के उपलब्धि स्तर विकास में एक अनौपचारिक पटल

* रविन्द्र कुमार मारु ** डा. गिरिराज भोजक

*शोधार्थी, शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ, राजस्थान
**सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ, राजस्थान

सार– सामान्य शब्दों में एक विद्यार्थी द्वारा अपने शिक्षण–तन्त्र में विनिर्दिष्ट पाठ्य–सामग्री से प्राप्त किये गये ज्ञान को उपलब्धि स्तर कहा जा सकता है। इस उपलब्धि की जाँच हेतु विभिन्न स्तरों पर परीक्षायें ली जाती हैं जिन्हें उपलब्धि स्तर परीक्षण कहा जाता है। ऐसे में उक्त ज्ञान प्रदान करने वाली संस्थाओं का यह कर्तव्य बनता है कि वह समय–समय पर विद्यार्थियों के उपलब्धि स्तर का अनौपचारिक मूल्यांकन भी करे जिससे विद्यार्थी अपने उपलब्धि–स्तर में वांछित परिणाम प्राप्त कर सके।

समाज के भावी उत्तरदायी व्यक्तियों के समक्ष एक शिक्षक अपने अनुभव एवं मूल्यों का इस तरह प्रदर्शन करता है कि वे अपने व्यवहार एवं कार्यों में अपेक्षित परिवर्तन कर समाज की सांस्कृतिक धरोहरों एवं मूल्यों की रक्षा करते हुए शिक्षण–तन्त्र द्वारा अपेक्षित परिणाम प्राप्त कर सकें। इसीलिये अध्यापकों को आश्वस्त होना चाहिये कि विद्यार्थी ने सम्बन्धित विषय की योग्यता किस स्तर तक प्राप्त कर ली है और इस योग्यता के मानक परिणाम प्राप्ति में क्या–क्या संभावनाएं अनुप्रयुक्त की जा सकती हैं। उक्त संभावनाओं में से शिक्षण प्रविधियों में नाट्यीकरण प्रक्रियाओं के अनुप्रयोगों का भी एक कारगर तरीके के रुप में समावेश किया जा सकता है। उक्त प्रक्रियाओं के अनुप्रयोग उपरान्त प्राप्त योग्यता मापांकों द्वारा विद्यार्थी के किसी एक निश्चित विषय–क्षेत्र में सफलता का मापन किया जा सकता है जो कि स्थापित मानदण्डों के अनुसार विभिन्न विद्यार्थियों में तुलना कर सापेक्ष सफलता के निर्धारण में सहायता प्रदान करते हैं।

मुख्य शब्द –नाट्यीकरण प्रक्रियाऐं एवं उपलब्धि स्तर विकास

प्रस्तावना

शिक्षा को मानव–जीवन का आधार स्तम्भ माना जा सकता है। इसके अभाव में मनुष्य को उत्कृष्टता एवं उच्चता के शिखर पर स्थापित कर पाना असंभव प्रतीत होता है। भारतीय शिक्षा प्रणाली का बीजारोपण सुदूर अतीत में आज से लगभग 6000 वर्ष पूर्व हो चुका था। ऐसी धारणा रही है कि शिक्षा विभिन्न रुपों में व्यक्ति एवं समाज में परिवर्तन लाती रही है। भर्तृहरि ने नीतिशतक में कहा है कि "विद्या विहीनः पशुभिः समानः" अर्थात शिक्षा के बिना मनुष्य पशु समान हैं। जब विश्व की सभी मान्यतायें प्रगति के शैशवकाल में विचरण कर रही थीं, तब भारतीय ऋषि तत्वज्ञान की गहन मीमांसा, चिन्तन एवं मनन में लीन थे, यथा ''ज्ञानं तृतीयं मनजस्य नेत्रं समस्ततत्वार्थ विलोकिदक्षम्। जोइनपेक्षं विगन्तान्तरायं प्रवृत्ति मत्सर्व जगत्त्रयोपि।। उस काल में शिक्षा के निश्चित लक्ष्य तथा उद्देश्य थे, जिनकी प्राप्ति के लिये विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों तथा व्रत, प्रार्थनायें, त्यौहारों को मनाना, नैतिक आचरण करना, मानसिक वैचारिक तथा आदतों की शुद्धता मूल वृत्तियों पर नियन्त्रण, अपनों से बडों, अपने समकक्ष तथा अपने से छोटों के प्रति शिष्टाचार या व्यवहार सम्बन्धित नियम, अध्यापक अधिगम व्यवहार इत्यादि निर्धारित किये जाते थे।

चौदह विधाओं/विद्वता संबंधी विज्ञान तथा 64 कलाओं (कला सम्बन्धी दैनिक जीवन नित्य किया संबंधी कार्य) शिक्षा के अभिन्न अंग होते थे। मनुष्य के सर्वांगीण विकास, समाज की चतुर्मुखी उन्नति एवं सभ्यता की बहुमुखी प्रगति की आधारशिला शिक्षा को ही मानते हुए भारत के मनीशियों ने समय–समय पर ऐसी शिक्षा प्रणालियों का प्रतिपादन किया जिससे विद्यार्थी का उक्त परिप्रेक्ष्य में सर्वांगीण विकास हो सके एवं ज्ञान के विविध क्षेत्रों में मौलिक विचारों की भी अवगति हो सके।

विद्यार्थी की सामाजिक परिप्रेक्ष्यता को केन्द्र–बिन्दु में रखते हुए उस पर स्वयं तथा समाज को उन्नत बनाने के निर्देशों का आवागमन प्रारम्भ हो जाता है और फिर यहीं से उस पर समाज में पूर्व से स्थापित तन्त्रों के अनुप्रयोगों और उसकी योग्यताओं के विविध स्तरों पर मापन का सिलसिला प्रारम्भ हो जाता है, जिसे उपलब्धि परीक्षण कहते हैं। उपलब्धि परीक्षण को परिभाषित करते हुए ईबेल ने कहा है "उपलब्धि परीक्षण वह अभिकल्प है जो शिक्षार्थी द्वारा ग्रहण किये गये ज्ञान, कौशल या क्षमता का मापन करता है। फ्रीमेन के अनुसार "शैक्षिक उपलब्धि परीक्षण वह अभिकल्प है जो एक विशेष विषय या पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों में व्यक्ति के ज्ञान, समझ या कौशल का मापन करता है।" सुपर के अनुसार "एक उपलब्धि या क्षमता परीक्षण यह ज्ञात करने के लिये प्रयोग किया जाता है कि व्यक्ति ने क्या और कितना सीखा तथा वह कोई कार्य कितनी भली–भाँति कर लेता है।"

लिडक्विस्त एवं मन के अनुसार "एक सामान्य निष्पत्ति परीक्षण वह है जो एक फलांक द्वारा निष्पत्ति के किसी दिये हुए क्षेत्र में विद्यार्थी के सापेक्षिक ज्ञान का बोध कराये।"

न्यून उपलब्धि स्तर से सम्बन्धित समस्याऐं:

यह सार्वभौमिक सत्य है कि एक ही पटल पर मापन किये जाने पर प्रत्येक व्यक्ति अपनी–अपनी क्षमताओं एवं ज्ञान को भिन्न भिन्न स्तरों पर प्रदर्शित करता हैं, जिसमें कुछ विद्यार्थी स्वयं को अन्यों से पृथक पाते हैं। एक विद्यार्थी के सन्दर्भ में उपलब्धि स्तर विकास से सम्बन्धित बहुत सी व्यवहारात्मक समस्याऐं देखी जा सकती हैं जो उनकी व्यक्तिगत एवं शालेय भी हो सकती हैं। यद्यपि यह समस्याऐं नई नहीं हैं, बल्कि यह तो जीव–मात्र के सामाजिक मनोविज्ञान से जुडी हुई एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जो अलग–अलग व्यवहारों से नियंत्रित और प्रभावित होती हैं। तथापि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एक विद्यालय के सन्दर्भ में यह एक गंभीर समस्या है जिसके नियन्त्रण एवं

निराकरण हेतु विद्यालय प्रशासन हर समय जूझता रहता है। जिसके उपचार हेतु विद्यालय अपने विद्यार्थी पर नित–नये तरीके अधिरोपित करता रहता है जिस कारण विद्यार्थी स्वयं को अन्यों के साथ सामंजस्य बैठाने में असमर्थ पाता है। स्थापित समाज के साथ तालमेल बैठाने के इस उपचारात्मक दबाव के कारण उसमें कई व्याधियॉ प्रविष्ठ हो जाती हैं जो कालान्तर में उसके समग्र विकास को प्रभावित कर सकती हैं।

वर्तमान सामाजिक वातावरण में जहॉ अभिभावकों की महत्वाकांक्षा, सामाजिक–आकांक्षा, सफल व्यक्ति का प्रभाव, संस्कृति, प्रतिस्पर्द्धा जैसे सामाजिक मूल्य विद्यमान हैं वहीं इच्छायें, व्यक्तित्व, पूर्वानुभव, मूल्य व रूचि, लिंग, सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि, वंष तथा परिवार की पृष्ठभूमि जैसे व्यक्तिगत आकांक्षा–स्तर भी उपलब्ध हैं जो कार्यो की सफलता व असफलता तथा आकांक्षा–स्तर को उच्च व न्यून बनाते हैं। समाज के अस्तित्व को बचाये रखने के उद्देश्य से इन समस्याओं का उन्मूलन करने के लिये मानव सदैव प्रयासरत रहा है तथापि जो स्वयं को समाज के स्वरुपों, संरचनाओं, संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं के अनुरुप नहीं ढाल पाता वो ही समस्या का पीडित घोषित कर दिया जाता है। यह सत्य हैं कि प्रत्येक व्यक्ति की क्षमताओं एवं ज्ञान को विभिन्न प्रक्रियाओं के अनुप्रयोगों द्वारा उन्नत एवं विकसित किया जा सकता है।

अरस्तु अपने शिष्यों को पढाने के बाद कुछ ना कुछ अवश्य पूछते तथा उत्तर के आधार पर सूक्ष्मता से निर्णय करते कि किसका उत्तर सर्वाधिक योग्य है? इससे ना सिर्फ विद्यार्थियों की प्रतिभा की परख होती अपितु उनकी स्वतंत्र सोच और व्यक्तित्व में निखार होता रहता था। अध्यापन में प्रायोगिकता की प्रासंगिकता को स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री जॉन ड्यूवी के अनुसार बालक क्रिया के द्वारा ही कार्य को सीखता है। उनके अनुसार शिक्षा का तात्पर्य प्रयोग एवं क्रियाशीलता के माध्यम से अनुभवों को विकसित, परिवर्तित और संशोधित करना है। उनके अनुसार यह प्रायोगिक पद्धति "करके सीखने के सिद्धान्त" पर बल देती है। इस प्रक्रिया में निरीक्षण, तर्क, निर्णय, कल्पना एवं अधिक इन्द्रियों का प्रयोग होने से बालक के मानसिक एवं सामाजिक विकास की प्रक्रिया तीव्र होती है। लेव व्योगोत्सकी का मानना था कि "बालक दैनिक जीवन में प्रत्ययों व अवधारणाओं से भी सीखता है। विद्यार्थी समूह, अध्यापकों एवं सन्दर्भित ढॉचे से सीखते हैं, जब बालक के सम्मुख वयस्कों द्वारा पूर्व स्थापित अवधारणा को प्रस्तुत किया जाता है तो उसे अपनी स्मृति में धारण कर लेता है। इसके पश्चात् वह उस सामान्यीकरण पर स्वयं विचार करता है। लेकिन बालकों को अपने साथियों से प्रभावित भी होना चाहिए और स्वयं का अन्वेशण करते रहना चाहिये।" नाट्यीकरण प्रक्रियाओं का अनुप्रयोग इसी दिशा में ऐसा ही एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावी पटल है।

नाट्यीकरण प्रक्रियाऐं:–

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या–2005 में स्पष्ट तौर पर लिखा है–शहर स्तर पर विषय के रूप में कला को जगह दिए जाने की सिफारिश की गई है जिसमें गायन, नृत्य, दृश्य कलाएँ और नाटक चारों पहलू शामिल हैं। पर यहाँ भी ज़ोर परस्पर–क्रियात्मक पद्धतियों पर होना चाहिए न कि प्रशिक्षण पर। क्योंकि कला शिक्षण का उद्देश्य सौंदर्यात्मक और वैयक्तिक चेतना को प्रोत्साहित करना है और विविध रूपों में खुद को व्यक्त करने की क्षमता को बढ़ावा देना है। भारतीय पारंपरिक दस्तकारियाँ आर्थिक और सौंदर्यपरक मूल्यों के अर्थ में स्कूली शिक्षा के लिए प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण हैं यह तथ्य पहचाना जाना चाहिए।

एक नाटक के प्रमुख तत्व/अवयवों में कथावस्तु, पात्र, रस (भाव) एवं अभिनय होते हैं जिनके संयोग से ही एक नाटक का जन्म होता है। कथानक से प्रारम्भ करने से लेकर नाटक की प्रस्तुति तक होने वाली प्रक्रियाओं को ही नाटयीकरण प्रक्रियाऐं कहते हैं। यह प्रक्रियाऐं नाटक के निर्माण की अपेक्षा अन्य कई पहलुओं में अधिक महत्वपूर्ण एवं व्यवहारिक होती है। नाटक का तात्पर्य सिर्फ उसका उत्पाद (प्रदर्शन) ही नहीं होता, अपितु यह सतत अधिगम प्रक्रिया का एक हिस्सा है। नाटक और नाटक की विभिन्न गतिविधियों के इस्तेमाल का भाषा सीखने में निश्चित लाभ तो मिलता ही है, साथ ही इससे बच्चों को मौका मिलता है कि वे सीमित भाषा के साथ अमौखिक संवाद–साधनों, जैसे कि शारीरिक गतिविधियों और चेहरे के हाव–भाव का इस्तेमाल करते हुए अपनी बात को सम्प्रेषित कर सके। इसके अलावा ऐसे बहुत से अन्य कारक भी हें जो नाटक को सम्पूर्ण अधिगम में एक बहुत सशक्त उपकरण बनाते हैं। नाटक खेल या थियेटर गेम न केवल नाटक अपितु शैक्षिक लक्ष्यों की एक विस्तृत विविधता को पूरा करने का सरल एवं लागत प्रभावी तरीका है। यह खेल रचनात्मक नाटक, आशुरचना, पेंटोमाइम, रचनात्मक आंदोलन और कहानी कहने के विविध तत्वों को समाहित करते हैं। थियेटर कला के मूलभूत कौशल को विकसित करने के साथ ही साथ ये साक्षरता विकास, शैक्षिक सफलता, और सामाजिक सम्पर्क पर भी जबरदस्त सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। यह खेल सहज ही स्कूल के विषयों या पाठ्य सामग्री के साथ सामंजस्य बैठाने की क्षमता रखते हैं। यह प्रक्रियाएँ एक बहुमुखी शिक्षण उपकरण हैं जो कई शिक्षण शैलियों, पाठ्यसामग्री, आयु वर्गों और भाषा तथा अनुभव के विविध स्तर तक अपनी पहुँच बनाती है। जिसमें विद्यार्थी के संज्ञानात्मक, सामाजिक, भावनात्मक और शारीरिक विकास पर गहरा सकारात्क प्रभाव होता है। यह सीखने का एक बहुसंवेदी माध्यम है जो मन शरीर, इन्द्रियों और भावनाओं को शामिल करता है ताकि सामग्री के लिए व्यक्तिगत लगाव पैदा हो जो समझ और प्रतिधारणा को बेहतर बनाता है। नाटक खेल और थियेटर गेम्स एक शिक्षक के परिप्रेक्ष्य में विभेदित निर्देश प्रदत्त कर पाने के लिए एक आदर्श रणनीति है। भाषा सम्बन्धी कठिनाईयों, सीखने मे कमजोरी, शारीरिक या मानसिक रुप से दुर्बल विद्यार्थियों के साथ नाटकीय प्रक्रियाएँ महत्त्वपूर्ण साबित हो सकती हैं जबकि परम्परागत सामग्रियों के साथ वे अक्सर संघर्ष करते दिखाई पडते हैं। प्रतिभाशाली विद्यार्थी इसमें